४२

कर्मवाद और आधुनिक चिंतन

□ डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

कर्मवाद को सिद्धान्त माना जाए या दर्शन, इसमें मतभेद हो सकता है। मैं उसे एक वाद या विचार मानता हूँ, क्योंकि वह जड़ और चेतन के बंध और मोक्ष की प्रक्रिया का विचार करता है। विकास की प्रारम्भिक स्थितियाँ पार कर, जब मानव जाति ने सामाजिक जीवन शुरू किया और आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टियों से उसमें ठहराव आया तो भाषा के साथ उसमें विचार चेतना विकसित हुई। सृष्टि और जन्म-मृत्यु के रहस्यों को जानने की तीव्र इच्छा में कई प्रश्न खड़े कर दिए। जैसे यह सृष्टि अपने आप बनी, या किसी ने इसे बनाया? उसका कारोबार स्वतः चल रहा है, या वह किसी अदृश्य शक्ति से नियंत्रित है? जीव क्या है, कहाँ से आता है, और कहाँ जाता है? वह स्वतंत्र तात्त्विक इकाई है, या कई तत्त्वों का मिश्रण है? उसमें इच्छाएँ क्यों पैदा होती हैं, वे अपने आप पैदा होती हैं या कोई पैदा करता है? आहार, निद्रा, भय और मैथुन की जैविक आवश्यकताएँ क्यों जीव के साथ जुड़ी हैं? आदमी इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जितने उपकरण जुटाता है, वे उतनी ही फैल-फैलाती जाती हैं, पूर्ति के संतोष के स्थान पर अपूर्ति का असंतोष तीव्रतर होता जाता है, पूर्ति के साधनों की होड़ में शोषण की सभ्यता शुरू हो जातो है। उसने जानना चाहा कि क्या आहार, निद्रा की दैनिक झंझटों वाले तथा जन्म-मृत्यु की कारात्रों में बंद जीवन के स्थान पर ऐसा जीवन पाया जा सकता है, जहाँ सब कुछ अनंत हो, प्रचुर हो, स्वकेन्द्रित हो, आनन्दमय हो?

इस प्रकार अनंत और शाश्वत जीवन की खोज में मनुष्य ने पाया कि इच्छामय जीवन से छुटकारे के बाद ही, शाश्वत जीवन पाया जा सकता है। अपने विचारों को निश्चित दिशा देने के लिए उसने कुछ पूर्व कल्पनाएँ कीं। किसी ने माना कि सृष्टि और जीव किसी नियंता के अधीन हैं, वही इनसे मुक्ति दिला सकता है, इसलिए उसका साक्षात्कार जरूरी है। दूसरे ने माना कि यह सृष्टि एक सनातन प्रवाह है जिसका न आदि है और न अंत। प्रवाह के कारणों को रोक देने से, आत्मा प्रवाह से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। कुछ ने यह माना कि आत्मा कुछ और नहीं, कई तत्त्वों के मेल से बनी इच्छा की ज्वाला है, दीपक की लौ की तरह उसका शांत हो जाना ही उसकी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चरम स्थिति या निर्वाण है। लेकिन ये विचार, किसी पूर्व कल्पना (Prothesis) को मूल मानकर चलते हैं, जिसके बारे में सभी दार्शनिकों का विचार है कि वह ईश्वर या सर्वज्ञ के द्वारा दृष्ट सत्य है, यह सत्य हो सकता है, परन्तु इस सत्य को पाने की प्रक्रिया का विचार करने वालों के लिए वह, एक पूर्वकल्पित सत्य ही होगा, क्योंकि वे यह दावा नहीं करते कि उन्होंने उक्त सत्य का साक्षात्कार कर लिया है।

जैन दर्शन के विचारक भी यह मानकर चलते हैं कि सृष्टि और उसमें जड़ चेतन का मिश्रण अनादि निधन है, यानी वह प्रारम्भ हीन सतत प्रवाह है। जीवन की सारी विषमताएँ और समस्याएँ—इसी मिश्रण की प्रतिक्रियाएँ हैं, वे वैभाविक परिणतियाँ हैं, राग चेतना की निष्पत्तियाँ हैं, जो जीव के साथ इतनी घुल-मिल गई हैं कि 'जीव' इन्हीं के माध्यम से अपने को पहचानता है। उसकी यह पहचान जितनी गाढ़ी होती है, उसे सुख-दुःख की अनुभूति उतनी ही तीव्रतर होती है। रागात्मक परमाणु चेतना के प्रत्येक गुण पर आवरण डाल देते हैं, और वह दुःखी हो उठती है, अनुकूल स्थिति में सुखी भी होती है। इस प्रकार व्यक्ति के सुख-दुःख का कारण, उसी में है न कि समाज या बाहरी परिस्थितियों में। अपने सुख-दुःख का कर्ता और भोक्ता व्यक्ति स्वयं है, जिन कर्मों से यह होता है, उनका कर्ता वह स्वयं है। इस प्रकार ऊपर से देखने पर कर्मवाद–व्यक्ति को करने की स्वतंत्रता देता है और उससे मुक्त होने का अधिकार भी। परन्तु मूलतः यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है, और एक बार जीव जब कर्म के जंजाल में फंस जाता है (या फंसा दिया गया है) तो उससे छूटना आसान नहीं है। फिर भी कर्मवाद में व्यक्ति को मुक्त होने की स्वतंत्रता है। लेकिन यह सारी विचारधारा, समाज निरपेक्ष विचारधारा है, जो मनुष्य को लौकिक दृष्टि से उदासीन और आत्म केन्द्रित बना देती है, उस पर यह बहुत बड़ा आक्षेप है। यह प्रवृत्ति मनुष्य को अकर्मण्य और सामाजिक संघर्ष से निरपेक्ष बना देती है, जबकि आधुनिक चिंतन इस विचारधारा को समाज के लिए अत्यंत खतरनाक मानता है।

वास्तव में देखा जाए तो दूसरे भारतीय दर्शनों की तरह जैन कर्मवाद भी इसी प्रवृत्ति का पोषक है। यानी उसके अनुसार व्यक्ति के नैतिक विकास से समाज और राष्ट्र का विकास स्वतः हो जाएगा। यह मान्यता, इतिहास के उतार-चढ़ाव में कई बार झुठलाई जा चुकी है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि आत्म स्वातंत्र्य की अलख जगाने वाला देश सहस्राब्दियों तक भौतिक गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा रहा, जिसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती।

आधुनिक चिंतन की परिभाषा को लेकर चाहे जो मतभेद हों, परन्तु

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सब स्वीकारते हैं कि सुख-दुःख, गरीबी-अमीरी के कारण हमारी समाज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था में मौजूद हैं। पुण्य-पाप, ऊँच-नीच के विचार को सामाजिक न्याय में आड़े नहीं आना चाहिए। परन्तु वह आता है। जैन कर्मवाद, इस सम्बन्ध में यथास्थिति वाद को स्वीकार करके चलता है। सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि कर्मवाद दृश्य समस्याओं के लिए अदृश्य कारणों को जिम्मेदार मानता है। दूसरा आक्षेप यह है कि कर्म प्रक्रिया इतनी जटिल है कि वह सामान्य बुद्धि के परे हैं। कर्मवाद का प्रयोग व्यक्ति स्तर पर किया गया, वह भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए। संसार या समाज व्यवस्था को बदलने की दिशा में उक्त वाद का कभी प्रयोग नहीं किया गया। यह भूलना भयावह होगा कि कर्मवाद जीवन की स्वीकृति है, उससे पलायन नहीं, वीतरागता का मार्ग रागात्मकता में से गुजरता है, मोक्ष, रागवृक्ष का फल है, फल पाने के लिए वृक्ष की पूरी संरचना की उपेक्षा का वही परिणाम होगा जो हम देख रहे हैं।

• ☐ •

☐ प्रत्येक कर्म ही कर्ता का चित्र हैं। अतः कर्ता की सुन्दरता तथा असुन्दरता का परिचय उसके किये हुए कर्म से ही व्यक्त होता हैं, सुन्दर कर्ता के बिना सुन्दर कार्य सम्भव नहीं हैं। कर्ता वही सुन्दर हो सकता हैं कि जिसका कर्म 'पर' के लिए हित-कर सिद्ध हो तथा किसी के लिए अहितकर न हो। अतः कार्यारम्भ से पूर्व यह विकल्प-रहित निर्णय कर लेना चाहिये कि उस कार्य का मानव-जीवन में स्थान ही नहीं हैं जो किसी के लिए भी अहितकर हैं। अहितकर कार्य का अर्थ हैं कि जो किसी के विकास में बाधक हो।

☐ प्राप्त परिस्थिति के अनुसार कर्त्तव्य-पालन का दायित्व तब तक रहता ही हैं जब तक कर्ता के जीवन से अशुद्ध तथा अनावश्यक संकल्प नष्ट न हो जाय, आवश्यक तथा शुद्ध संकल्प पूरे होकर मिट न जाय, सहज भाव से निर्विकल्पता न आ जावे, अपने आप आयी हुई निर्विकल्पता से असंगता न हो जाय तथा असंगतापूर्वक प्राप्त स्वाधीनता को समर्पित कर जीवन प्रेम से परिपूर्ण न हो जाय। कर्त्तव्य-पालन से अपने को बचाना भूल हैं। अतः प्राप्त परिस्थिति के अनुरूप मानव को कर्त्तव्यनिष्ठ होना अनिवार्य हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org